शिष्ट बनें सज्जन कहलायें

शिष्ट बनें सज्जन कहलायें

सभ्यता और शिष्टाचार

सभ्यता और शिष्टाचार का पारस्परिक संबंध इतना घनिष्ठ है कि एक के बिना दूसरे को प्राप्त कर सकने का ख्याल निरर्थक है । जो सभ्य होगा वह अवश्य ही शिष्ट होगा और जो शिष्टाचार का पालन करता है उसे सब कोई सभ्य बतलाएंगे । ऐसा व्यक्ति सदैव ऐसी बातों से बचकर रहता है जिनसे किसी के मन को कष्ट पहुँचे या किसी प्रकार के अपमान का बोध हो । वह अपने से मतभेद रखने वाले और विरोध करने वालों के साथ भी कभी अपमानजनक भाषा का प्रयोग नहीं करता । वह अपने विचारों को नम्रतापूर्वक प्रकट करता है और दूसरों के कथन को भी आदर के साथ सुनता है । ऐसा व्यक्ति आत्म प्रशंसा के दुर्गुणों से दूर रहता है और दूसरों के गुण की यथोचित प्रशंसा करता है । वह अच्छी तरह जानता है कि अपने मुख से अपनी तारीफ करना ओछे व्यक्तियों का लक्षण है । सभ्य और शिष्ट व्यक्ति को तो अपना व्यवहार, बोल–चाल कथोपकथन ही ऐसा रखना चाहिए कि उसके सम्पर्क में आने वाले स्वयं उसकी प्रशंसा करें ।

बहुत से लोग शिक्षा और अच्छे फैशन वाले वस्त्रों के प्रयोग को ही सभ्यता और शिष्टाचार का मुख्य अंग समझते हैं । पर यह धारणा गलत है । शिथिल और बढ़िया पोशाक पहनने वाला व्यक्ति भी अशिष्ट हो सकता है और गाँव का एक हल चलाने वाला अशिक्षित किसान भी शिष्ट कहा जा सकता है । शिष्टाचार में ऐसी शक्ति है कि मनुष्य बिना किसी को कुछ दिए लिए अपने और परायों का श्रद्धाभाजन, आदर का पात्र बन जाता है, पर जिसमें शिष्टाचार का अभाव है, जो चाहे जिसके साथ अशिष्टता का व्यवहार

कर बैठते हैं । उन लोगों के घर के आदमी भी उनके अनुगत नहीं होते और संसार में सब उनको अपने विरोधी ही नजर आते हैं ।

शिष्टाचार मनुष्यता का परिचायक है–एक प्राचीन कहावत है कि 'मनुष्य का परिचय उसके शिष्टाचार से मिल जाता है ।'' उसका उठना, बैठना, चलना, फिरना, बातचीत करना, दूसरों के घर जाना रास्ते में परिचितों से मिलना, प्रत्येक कार्य एक अनुभवी को यह बतलाने के लिए पर्याप्त होता है कि वास्तव में व्यक्ति किस हद तक सामाजिक है ? इस दृष्टि से जब हम अपने पास–पड़ौस पर दृष्टि डालते हैं तो हमको खेद के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि इस समय हमारे देश में से शिष्टाचार की प्राचीन भावना का ह्रास हो रहा है और आधुनिक शिक्षा प्राप्त नवयुवक प्रायः शिष्टाचार शून्य और उच्छृंखलता को आश्रय दे रहे हैं । कालेज और स्कूलों में पढ़ने वाले अधिकांश विद्यार्थी रास्ते में भी आपस की बातचीत में अकारण ही गालियों का प्रयोग करते और धक्का मुक्की करते दिखाई देते हैं । दुकानदारी पेशे वाले भी हँसी–मजाक में 'साले' और 'बहिन की गाली' देकर बात करना एक मामूली बात समझते हैं । इन सबके उठने बैठने का तरीका भी सभ्य नहीं कहा जा सकता । इन बातों का विचार करके एक विद्वान् ने ठीक ही कहा है–

'हम बैठते हैं तो परस्पर, बोलते हैं तो चिंघाड़कर । पान खाते हैं तो पीक कुरते पर, खाने बैठे तो सवा गज धरती पर रोटी के टुकड़े और साग–भाजी फैला दी । धोती पहनी तो कुरता बहुत नीचा हो गया । कुरता मैला तो धोती साफ । बिस्तर साफ तो खाट ढीली । कमरे में झाड़ू लगाई तो दूसरों को धकियाते हुए–ये सब तरीके ही किसी को सभ्य या असभ्य बताते हैं । हम चाहे घर में हो या समाज में, इन सब बातों का हमको ध्यान रखना चाहिए ।'

हमारे आचरण और रहन–सहन में और भी ऐसी अनेक छोटी–बड़ी खराब आदतें शामिल हो गई हैं जो अभ्यास वश हमको बुरी नहीं जान पड़तीं । पर एक बाहरी आदमी को वे असभ्यता की ही जान पड़ेंगी । उदाहरण के लिए किसी से कोई चीज उधार लेकर लौटाने का पूरा ध्यान

न रखना । मँगनी की चीजों को लापरवाही से रखना और खराब करके वापिस करना । बाजार से उधार वस्तु खरीदकर दाम चुकाने का ध्यान न रखना । किसी व्यक्ति को वायदा करके घर बुलाना और उस समय स्वयं बाहर चले जाना । चिट्ठियों का समय पर जबाव न देना, अपने कार्यालय में हमेशा देर करके जाना । इस प्रकार की सैकड़ों बातें हैं जिनसे मनुष्य की प्रतिष्ठा में अंतर पड़ता है और वह दूसरों की आँखों में हलके दर्जे का प्रतीत होने लगता है ।

त्रिविध शिष्टाचार–एक अनुभवी लेखक ने शिष्टाचार से विपरीत बातों को तीन श्रेणियों में बाँटा है–(१) वचन संबंधी (२) चेष्टा संबंधी (३) कर्म संबंधी । इनका संक्षेप में वर्णन करते हुए उन्होंने बतलाया है–

वचनात्मक शिष्टाचार में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि श्रोता की मर्यादा के अनुकूल आदरसूचक शब्दों का प्रयोग किया जाए । बातचीत में आत्मप्रशंसा करने, अपने मुँह मियामिट्ठू बनने की प्रवृत्ति को रोकना चाहिए और यथासंभव परनिन्दा से भी बचना चाहिए । किसी की बात काटनी और उसके कथन में भूलें निकालते रहना भी शिष्टाचार के विरुद्ध है । बातचीत में आवश्यकता से अधिक विनोद भी अशिष्ट समझा जाता है । मित्र मण्डली में किसी एक ही विषय पर अथवा एक ही व्यक्ति के साथ संभाषण करने से अशिष्टता सूचित होती है । कई लोगों को बोलते समय "इसका क्या नाम"–"जो है सो" आदि पाद पूरक शब्द या वाक्यांश बार–बार कहने की आदत पड़ जाती है, दूसरों को अप्रिय या हास्यास्पद जान पड़ती है ।

"चेष्टात्मक शिष्टाचार मनुष्य की मुखमुद्रा तथा शरीर के अन्यान्य अवयवों के संचालन से संबंध रखता है । चेहरे पर सदा गंभीरता का भाव धारण करने से मनुष्य का मिथ्याभिमान प्रकट होता है, इसलिए अन्य लोगों से मिलने पर थोड़ी बहुत प्रसन्नतायुक्त मुस्कराहट प्रदर्शित करना चाहिए । शोक में खिन्नता और श्रद्धा में नम्रता का भाव प्रकट करने की आवश्यकता है । किसी प्रश्न का उत्तर शब्दों के बदले सिर हिलाकर देना असंयता समझा जाता है । जब तक कोई विशेष कारण न हो तब तक

किसी को विशेषकर स्त्रियों को सिर या हाथ के संकेत द्वारा न बुलाना चाहिए ।"

"क्रियात्मक शिष्टाचार में उन सब कार्यों का समावेश होता है जो मनुष्य किसी व्यक्ति या समाज के सुभीते के लिए करता है । मनुष्य को प्रत्येक कार्य में अपने पड़ौसी की असुविधा का ध्यान अवश्य रखना चाहिए । सड़क पर बांई ओर चलना चाहिए और वृद्धों तथा स्त्रियों को रास्ता दे देना चाहिए । किसी के घर के पास या उसके द्वार के सामने खड़े होकर जोर–जोर से बात करना अशिष्टता है । जब तक विशेष आवश्यकता न हो तब तक किसी को बुलाने के लिए उसके घर के किवाड़ खटखटाना ठीक नहीं होता । अपने घर आए मेहमानों का यथाशक्ति सत्कार करना शिष्टता का आवश्यक अंग है ।"

भारतीय शिष्टाचार की विशेषताएँ

इस संसार में विभिन्न प्रकार की राष्ट्रीयताओं, मजहबों, संप्रदायों, जलवायु, वातावरण का जो अंतर पाया जाता है और राजनैतिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक आदि दृष्टियों से यह जिस प्रकार हजारों भागों में बँटा हुआ है उसे देखते हुए प्रत्येक मनुष्य से शिष्टाचार के एक से नियमों के पालन की आशा करना युक्तियुक्त नहीं है । हिन्दू, मुसलमान और ईसाइयों के जातीय शिष्टाचार में अनेक बातें एक–दूसरे से भिन्न हैं फिर भी वर्तमान समय में वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण सब लोगों का मिलना–जुलना और उनका पारस्परिक व्यवहार, लेन–देन इतना अधिक बढ़ गया है कि अब शिष्टाचार के कुछ ऐसे सामान्य नियम भी बन गए हैं जिनका ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को होना उचित है ।

फिर भी हमारा कर्तव्य है कि हम सबसे पहले अपनी भारतीय सभ्यता और शिष्टाचार की जानकारी प्राप्त करें, क्योंकि निःसंदेह यह सबसे प्राचीन सभ्यता है और जबकि संसार की अधिकांश संस्कृतियों का अंत कुछ सौ वर्षों में ही हो चुका है, वह पिछले हजारों वर्षों से स्थिर है । सच तो यह है कि अन्य सभ्यताओं का आविर्भाव इसी की प्रेरणा और अनुकरण

से हुआ है । हमारे शास्त्रवेत्ताओं का कथन सर्वथा निराधार नहीं है–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्व स्वं चरित्र शिक्षरेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

अर्थात्–"इसी देश के ऋषि मुनि और विद्वानों के संसर्ग से पृथ्वी भर के मनुष्यों ने चरित्र और सभ्यता की शिक्षा प्राप्त की है ।" इस दृष्टि से भारतीय सभ्यता संसार भर की सभ्यताओं की जननी है और आज भी उसके भीतर वे सब तत्व निहित हैं जिससे किसी भी जाति की संस्कृति स्थाई और कल्याणकारी बन सकती है । यद्यपि कुछ समय पूर्व योरोप वाले ज्ञान से प्रमत्त होकर भारत को अर्ध सभ्य कहने लगे थे, पर अब हमारे साहित्य और संस्कृति को सबका आदि स्रोत मानने लग गए हैं । इस सचाई को सामने रखकर महात्मा गांधी ने अपने भाषण में कहा था–

"मेरी धारणा है कि भारत ने जिस सभ्यता को जन्म दिया था विश्व की कोई सभ्यता उसकी बराबरी की नहीं है । हमारे पूर्व पुरुष जो बीज बो गए हैं उसकी समता करने वाली इस संसार में एक भी वस्तु नहीं है । रोम के धुर्रे उड़ गए, यूनान का नाम शेष रह गया, फिरोज का साम्राज्य रसातल को चला गया, जापान पश्चिम के चंगुल में फँस गया और चीन की तो बात कुछ कहते ही नहीं बनती । परंतु भारत की, पत्ते झड़ जाने पर भी जड़ें मजबूत है ।"

यदि हम अपनी संस्कृति की विशेषताओं पर विचार करें तो सबसे पहली बात हमको यह दिखलाई पड़ती है कि जहाँ अन्य देशों की सभ्यता और शिष्टाचार में बाह्य नियमों और कार्यों पर अधिक जोर दिया गया है । हमारे यहाँ उसकी असलियत को बढ़ाने का ध्यान रखा गया है । अगर हम किसी मनुष्य का प्रकट में तो बड़ा आदर सत्कार करें, किंतु पीठ पीछे उसकी निन्दा करें, उसकी जड़ खोदते रहें, तो उस दिखावटी शिष्टाचार का कम मूल्य नहीं समझा जा सकता । भारतीय संस्कृति शिक्षा देती है कि हम अपने परिचितों के प्रति शिष्टाचार के बाहरी नियमों का पालन करते हुए उसके प्रति हृदय में सद्भावना और सहृदयता भी रखें । इन आंतरिक भावनाओं से ही हमारे व्यवहार में वह वास्तविकता उत्पन्न

होती है जिसकी तरफ सच्चे व्यक्ति आकर्षित होते हैं । भगवान कृष्ण ने दुर्योधन के राजसी स्वागत को त्यागकर बिदुर के अत्यंत साधारण आतिथ्य को स्वीकार किया तो उसका कारण यही था कि जहाँ दुर्योधन का स्वागत दिखावटी था वहाँ विदुरजी की भावनाएँ पूर्ण रूप से आंतरिक थीं । इसीलिए हमारे मनीषियों ने सम्माननीय व्यक्तियों के साथ आदर पूर्ण सत्कार का व्यवहार करते हुए उनके प्रति मन से श्रद्धा और सहायता के भाव रखने पर जोर दिया ।

शिष्टाचार और सद्भावना : यद्यपि समाज में शिष्टाचार के प्रचलित नियमों का पालन करना आवश्यक कर्तव्य है, पर यदि हमारा इस प्रकार का व्यवहार हार्दिक नहीं हुआ तो उसकी कृत्रिमता आम लोगों से छिप नहीं सकती । जहाँ आन्तरिक शिष्टाचार से अन्य व्यक्तियों के भीतर भी हमारे प्रति मैत्री और आत्मीयता के भाव उत्पन्न होते हैं वे हमारे साथ सहयोग करने को उद्यत होते हैं वहाँ नकली शिष्टाचार से उनके मन में यह ख्याल पैदा होता है कि संभवतः हम किसी स्वार्थ या गुप्त अभिसंधि के कारण उनकी आवभगत कर रहे हैं ।

इसलिए हम पारस्परिक विश्वास, सहयोग और संगठन की वृद्धि करना चाहते हैं तो उसके लिए हमको सद्भावना को अपने हृदय में स्थान देना होगा इस प्रकार के व्यवहार में सबका लाभ है अन्यथा यदि हम दिखावटी व्यवहार करते रहें तो उससे संदेह और संशय की ही बढ़ोत्तरी होगी, जिसका अंतिम परिणाम दोनों पक्षों के लिए नाशकारी ही होगा । यदि हम यह सोचें कि दूसरे लोग हमारी चालाकी को न जान सकेंगे तो वह भूल है । हम चाहे ऊपर से शिष्टाचार का ढोंग करके लोगों को धोखा देने का प्रयत्न करें, पर वास्तविकता प्रकट हो ही जाती है और लोग असली तथा नकली भावनाओं का पता लगा लेते हैं । इसलिए हमको सबसे मैत्री–भावना रखना चाहिए और किसी के प्रति मन में ईर्ष्या द्वेष को स्थान नहीं देना चाहिए ।

इसका आशय यह नहीं कि हम हर एक अपरिचित व्यक्ति पर बिना समझे बूझे विश्वास कर लें और वे हमारी सद्भावना से अनुचित लाभ

उठाकर हमको हानि पहुँचाएँ । खासकर वर्तमान समय में धोखेबाजी की प्रवृत्ति बहुत बढ़ रही है और लोग सचाई, सहृदयता का जाल फैलाकर दूसरों को ठगने का प्रयत्न करते रहते हैं । इसलिए हर एक के साथ प्रेम और शिष्टाचार का व्यवहार करते हुए सतर्क और सावधान भी रहना चाहिए और जो लोग अनजान में आकर मीठी मीठी बातें करें, किसी प्रकार के लाभ का सब्जबाग दिखाएँ उनकी मीठी बातों में हर्गिज नहीं आना चाहिए ।

सहृदयता का महत्व सहृदयता की भावना भी महत्वपूर्ण है । किंतु जिसका हृदय विशाल और निर्मल होगा वही सद्भावना से भी युक्त हो सकेगा । ऐसा मनुष्य अपनों के साथ नहीं गैरों के साथ भी अपनेपन का व्यवहार करता है, मीठी वाणी बोलता है और जितना संभव होता है सहायता देने को भी प्रस्तुत रहता है । इसलिए अन्य लोगों का मन भी उसकी तरफ आकर्षित होता है और उसको मित्रों की कमी नहीं रहती ।

रूखापन अथवा नीरसता मानव जीवन में एक बहुत बड़ी त्रुटि है । अनेक व्यक्तियों में स्वार्थपरता का भाव इतना प्रबल होता है कि अपने निजी परिवार, स्त्री, बेटी, बेटा, संपत्ति, जायदाद के सिवाय उनको और किसी व्यक्ति या सामाजिक विषय में दिलचस्पी नहीं होती । वे विचार क्षेत्र को बहुत ही संकुचित बना लेते हैं जिससे समस्त देश या समाज की क्या बात, दो चार मकान के फासले पर रहने वाले पड़ौसी के सुख–दुख और हानि–लाभ की भी खबर नहीं रखते, ऐसे लोग चाहे कुछ धन कमा लें या बँगला और मोटर प्राप्त कर लें, पर उनका कोई भी महत्व नहीं होता और संसार के लिए उनका जीवित रहना या परलोक प्रयाण करना बराबर ही रहता है ।

शिष्टाचार और सहृदयता का परस्पर बहुत अधिक संबंध है । जिसकी विचारधारा और मानसिक वृत्तियाँ शुष्क, नीरस और कठोर हो गई हैं वह किसी के साथ प्रेमपूर्वक नहीं मिल सकता, न किसी के साथ हार्दिक शिष्टाचार का व्यवहार कर सकता है । इसका परिणाम यह होगा कि दूसरे

लोग भी उससे उपेक्षा तथा पृथकता का व्यवहार करेंगे और वह संसार में अकेला ही अपने जीवन को व्यर्थ में खोता रहेगा । ऐसे ही लोगों के विषय में कहा गया है–

आवत ही हरषै नहीं, नयनन नहीं सनेह ।
तुलसी तहाँ न जाइये, कंचन बरसे मेह ॥

वास्तव में रूखापन, सरसता का अभाव मनुष्य के लिए एक बड़ा अभिशाप है । मनुष्य का सबसे बड़ा लक्षण पारस्परिक प्रेम, सहयोग और संगठन ही हैं । इसी से मनुष्य को अन्य पशुओं से पृथक किया जा सकता है । यदि मनुष्य इन गुणों को छोड़कर केवल अपने तक ही सीमित हो जाए तो यही कहना पड़ेगा कि उसने मनुष्य का चोला व्यर्थ ही धारण किया । संसार उनकी संपत्ति, पदवी, सत्ता की कभी कदर न करेगा और वह निर्जन स्थान के ठूँठ की तरह एक दिन जहाँ से आया है, वहीं फिर चला जाएगा । ऐसे व्यक्तियों पर किसी भावुक कवि की निम्न पंक्तियाँ पूरी तरह लागू होती हैं–

चाहे पदवी बाकी होय बहुत ही भारी ।
दुनिया वाको नाम बड़ौ कर जाने सारी ॥
केवल स्वारथ साधन में निज समय गंवायौ ।
मन समाज हित साधन में कबहुँ न लगायौ ॥
पड़ी रहत सब धन बल पदवी एक किनारे ।
सिर जम के आय बजत हैं जबहिं नगारे ॥

मनुष्य को दुनिया में अपना नियमित कार्य जीवन निर्वाह का उद्योग करते हुए सबसे मिलजुलकर ही रहना चाहिए । जब मनुष्य दूसरों से प्रेमपूर्वक व्यवहार न करेगा, उनसे दो मीठी बात न बोलेगा, आने वाले का आदर सत्कार न करेगा, तब तक उनकी गिनती सभ्य और शिष्ट व्यक्तियों में नहीं हो सकती है । सहृदयता एक ऐसा गुण है जिससे एक साधारण श्रेणी का व्यक्ति भी अनेक लोगों का प्यारा मित्र घनिष्ठ सखा बन जाता है और साधारण साधनों वाला होता हुआ भी आनन्दमय जीवन व्यतीत कर लेता है ।

शिष्टाचार और सद्‌गुण : यदि हम ये कहें कि शिष्टाचार और सभ्यता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं तो इसमें कुछ भी आतिशयोक्ति नहीं है । जिस मनुष्य के स्वभाव में अनेक सद्‌गुण और सत्प्रवृत्तियाँ होंगी वही वास्तव में शिष्टाचारी कहला सकता है । यों साधारणतः शिष्टाचार का आशय ऊपरी आवभगत तथा हृदय में कोई प्रेमभाव न होते हुए भी प्रकट करना मान लिया गया है पर जैसा हम ऊपर कह चुके हैं यह भारतीय आदर्श के अनुकूल नहीं है । प्राचीन स्मृति ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रमों का वर्णन करते हुए शिष्टाचार का भी वर्णन आया है और उससे सिद्ध होता है कि उस समय भारतवर्ष में सच्चे शिष्टाचार का सर्वत्र प्रचलन था । उस समय बालकों को आरंभ से ही गुरुजनों के प्रति पूर्ण आदर और श्रद्धा रखने की शिक्षा दी जाती थी और गृहस्थों के लिए किसी भी अतिथि–नवागन्तुक का हार्दिक श्रद्धा और भक्ति से सत्कार करने का विधान बनाया गया था । दक्ष स्मृति में कहा गया है–

सुधावस्तूनि वक्ष्यामि विशिष्टे गृहमागते ।
मनश्चक्षुर्मुखंवाचं सौम्यं दत्वा चतुष्टयम् ॥
अभ्युत्थानततोगतगच्छत् पृच्छालाप प्रियान्वित ।
उपासना मनुव्रज्या कार्याण्येतानि नित्यशः ॥

अर्थात् "गृहस्थों का कल्याणकारी नियम यह है कि वे किसी सज्जन के अपने घर आने पर मन, नेत्र, मुख, वाणी–इन चारों को सौम्य रखें । उनको देखते ही खड़े होकर आने का प्रयोजन पूछें, प्यार से बोलें, यथोचित सेवा करें और चलते समय कुछ दूर उनके पीछे जाएँ । इस प्रकार का आचरण प्रतिदिन करना कर्तव्य धर्म है ।

शिष्टाचार के इन नियमों में पहले यही शिक्षा दी गई है कि अपने यहाँ जो आवे उसका आदर केवल ऊपर से ही नहीं वरन् मन, नेत्र, मुख और वाणी सब तरह से करें । सबसे पहली बात यह है कि हम हृदय में निश्चय रखें कि किसी आगन्तुक का सत्कार, सेवा करना हमारा मानवीय कर्तव्य है । यदि हम उसका पालन नहीं करते तो मनुष्यता से गिरे हुए सामान्य पशु की तरह ही माने जाएंगे । मनुष्य को परमात्मा ने जो ज्ञान दिया है

उसका उद्देश्य यही है कि वह संसार में बिखरे हुए आत्म तत्व को जानकर समस्त प्राणियों के साथ सहानुभूति का व्यवहार कर सकें । पशु और मनुष्य में मुख्य अंतर यही है कि पशु इस आत्मतत्व को समझ सकने में असमर्थ होता है इसलिए उसका व्यवहार अपनी शारीरिक आवश्यकताओं तक ही सीमित रहता है । पर मनुष्य अपने विवेक द्वारा यह अनुभव कर सकता है कि शरीरों की पृथकता होने पर आत्मतत्व की दृष्टि से सब प्राणी एक ही हैं, इसलिए संसार में सबसे बड़ा पुण्य या शुभ कार्य दूसरों को संतुष्ट करना है । यदि हम ऐसा काम करते हैं जिससे दूसरों की आत्मा को क्लेश होवे या कष्ट पहुँचे तो वही पाप है । यही भारतीय शिष्टाचार का मूल है जिसके आधार पर यहाँ अतिथि सत्कार गृहस्थ का सबसे बड़ा धर्म बतलाया गया था । उस समय मनुष्य केवल मीठी बातों से ही किसी आगन्तुक को प्रसन्न करने की चेष्टा नहीं करते थे वरन् मन, वचन, कर्म एवं श्रद्धा से उनकी सेवा उसकी आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयत्न करते थे । यह देश का क्रियात्मक शिष्टाचार था जिससे प्रकट होता था कि हम वास्तव में दूसरे व्यक्ति को एक आत्मीय की तरह मानते हैं और उसके लिए वास्तव में कुछ कष्ट सहन, त्याग, परिश्रम करने को तैयार हैं । इस प्रकार के स्वागत, शिष्टाचार का प्रभाव ही मेहमान पर चिरस्थाई रह सकता था ।

शिष्टाचार के सामान्य नियम

अब प्राचीन काल की परिस्थितियों में बहुत अंतर पड़ गया है । इस समय नई–नई पक्की सड़कों, रेल, मोटर, जहाज, वायुयान आदि आवागमन के साधनों की अत्यधिक वृद्धि के फलस्वरूप संसार भर के लोगों का एक से दूसरे देश में आना–जाना और पारस्परिक लेन देन, व्यवहार बहुत बढ़ गया है । इस समय शिष्टाचार की व्याख्या करना बहुत कठिन हो गया है, क्योंकि जो कार्य एक देश में शिष्टाचार माना जाता है, वही दूसरे में उसके विरुद्ध समझा जा सकता है । हमारे यहाँ नंगे पैर रहना साधुओं का लक्षण समझा जाता है और स्वास्थ्य की दृष्टि से भी नंगे पैर टहलने को

लाभदायक बतलाया गया है, पर अंग्रेजों में नंगे पैर रहना, विशेषतया किसी स्त्री के सामने नंगे पैर जाना बहुत ही असभ्यता का चिह्न माना जाता है । इसी प्रकार योरोप–अमरीका में भोजन के पश्चात् थोड़ी सी पी लेना रहन–सहन का साधारण अंग माना जाता है, पर भारतीय संस्कृति में इसकी गिनती महा पापों में की गई है और कम से कम यहाँ का कोई सम्माननीय व्यक्ति प्रकट रूप में इस कार्य को अपनी मर्यादा के अनुकूल नहीं समझता ।

इन स्थानीय या एक दैशीय शिष्टाचार की बातों को छोड़ देने पर भी पिछले सौ डेढ़ सौ वर्षों में संसार की विभिन्न सभ्यताओं के सम्मिलन से कुछ ऐसे सर्वमान्य नियम निकल आए हैं जिनको अंतर्राष्ट्रीय शिष्टाचार कहा जा सकता है । जो व्यक्ति उनको जानता है और पालन करता है, वह हजारों मील के फासले पर बसे सर्वथा अजनवी देश में पहुँचकर भी किसी तरह की असुविधा अनुभव नहीं कर सकता और वहाँ के निवासियों में मिल–जुलकर जीवनयापन कर सकता है । यही कारण है कि आज समस्त दुनिया सिमटकर एक छोटे देश की तरह बन गई हैं जिसमें हम बिना किसी भय के कहीं भी आना जाना कर सकते हैं ।

जब भारतीय संस्कृति के अनुकूल शिष्टाचार के नियमों पर विचार करते हैं तो उनमें से कुछ का वर्गीकरण इस प्रकार से कर सकते हैं–

धार्मिक, नैतिक और चारित्रिक :

(१) प्रत्येक धर्म का सम्मान करना हमारा कर्तव्य है । परधर्मी होने का ख्याल करके किसी के धार्मिक रीति–रिवाजों में हस्तक्षेप करना अमानवता का चिह्न है ।

(२) जिस समय कोई व्यक्ति ईश्वरोपासना या किसी प्रकार के धार्मिक जप–पाठ आदि में लगा हो उस समय उससे बोलना या टोकना उचित नहीं ।

(३) कितने ही व्यक्ति 'सीताराम', 'राधेश्याम', 'शिव–शिव' आदि नामों को बड़े जोर से चिल्लाकर बोल उठते हैं । खासकर घण्टा, दो घण्टा

रात रहते ही जब अधिकांश व्यक्ति सो रहे हों इस प्रकार का शोर करना उचित नहीं है ऐसा करना व्यक्ति का लक्षण नहीं वरन् एक तरह का सनकीपन समझा जाता है ।

(४) भारतवर्ष में दान ने भिक्षा मांगने का रूप ले लिया है, जिससे करोड़ों लोगों में निकम्मेपन की भावना पैदा हो गई है । इसलिए शरीर से कार्यक्षम होते हुए, बिना परिश्रम के माँगकर खाना बहुत बुरा है ।

(५) किसी भिखारी को यदि भीख देना उचित न जान पड़े तो उसे सीधी तरह इनकार कर देना चाहिए । उसे डाँटना फटकारना या व्यंग्य वचन बोलना ठीक नहीं ।

(६) धार्मिक स्थानों के पास शांति और सदाचार का वातावरण बनाए रखना चाहिए वहाँ पर गन्दगी फैलाना या उनको नशेबाजी या अन्य जघन्य कृत्यों के केन्द्र बनाना असभ्यता का परिचायक है ।

(७) सूर्योदय के पूर्व शैया–त्याग करना भारतीय संस्कृति का एक स्वर्णिम नियम है, जिससे स्वास्थ्य के अतिरिक्त मनुष्य की मानसिक और आध्यात्मिक वृत्तियाँ भी उच्च बनती हैं । जो लोग सुबह सात–आठ बजे तक बिस्तर पर पड़े रहने को अमीराना आदत समझते हैं वे आलसी और मूर्ख समझे जाएंगे ।

(८) भारतीय सभ्यता के अनुसार जूते पहिनकर किसी धार्मिक पवित्र स्थान में नहीं जाना चाहिए चाहे वह किसी भी मजहब या संप्रदाय का क्यों न हो । कुआँ या सार्वजनिक घाटों पर भी जूते को जल के निकट तक नहीं ले जाना चाहिए । पनघट पर जूता पहिनकर जाना उसे गन्दा करना ही है, जो सार्वजनिक हित की दृष्टि से अनुचित है । जूता पहनकर भोजन करना अंग्रेजी चलन भले ही हो पर अपने देश के नियमों से यह सर्वथा प्रतिकूल है ।

(९) देव स्थानों में प्रवेश करते समय जूता, लाठी, छाता आदि वस्तु बाहर ही रखनी चाहिए ।

(१०) ऐसे स्थानों में, जिनके चारों ओर दीवार या किसी अन्य प्रकार की स्थाई या अस्थाई रोक बनाई गई हो बिना स्वामी या प्रबंधक

की आज्ञा प्राप्त किए घुसना अनुचित है । ऐसे स्थानों मे दीवार फांदकर, बाड़ तोड़कर या तार अथवा रस्सियों के बीच में होकर घुसना एक प्रकार की चोरी या असभ्यता है ।

(११) स्टेशन, बस स्टॉप, डाकखाना या खेल तमाशों में टिकट बिकने की खिड़कियों पर धक्कम–धक्का करना बुरा है । इससे सबको असुविधा और हानि उठानी पड़ती है । ऐसे स्थानों पर सदा शांतिपूर्वक एक लाइन में खड़े होकर अपने नम्बर पर ही पहुँचना चाहिए ।

(१२) सार्वजनिक स्थानों और निजी आवास स्थानों में आने–जाने के संबंध में जो सूचनाएँ लिखी हों उनका ठीक तरह से पालन करना चाहिए । ऐसे नियमों का किसी प्रकार का उल्लंघन करना और मना करने पर भी जबरदस्ती, लड़–झगड़ कर अपनी मनमानी पर अड़े रहना उच्छृंखलता का परिचायक है ।

(१३) सार्वजनिक भाग के बीच में कई लोगों को खड़े होकर भीड़ लगाना, जोर–जोर से बोलना और हँसी मजाक करना बुरा है । इसमें अन्य लाखों को कष्ट या असुविधा हो सकती है । ऐसे स्थानों पर चाहे जहाँ थूकना या किसी अन्य प्रकार से गंदा कर देना भी एक नीचता का लक्षण है ।

(१४) सभा, सार्वजनिक उत्सव, मेले, खेल तमाशे आदि में उस स्थान पर बैठना चाहिए जो आपके लिए नियत हों । ऐसे नियमों को जान–बूझकर तोड़ना और उछल–कूद मचाना बचकानापन है । ऐसे अवसरों पर व्यवस्थापकों या स्वयंसेवकों आदि के आदेशानुसार कार्य करना ही सभ्यता एवं अनुशासन का नियम माना जाता है ।

(१५) ऐसे स्थानों या सवारियों में जिनमें टिकट लेकर जाना पड़ता है, बिना टिकट के घुसने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए और उसी दर्जे में बैठना चाहिए जिसका टिकट खरीदा हो । इसके विपरीत आचरण करना असफलता ही नहीं वरन् एक तरह की चोरी है ।

(१६) कुआँ, तालाब, घाट, नदियों के तट पर कूड़ा–करकट, पत्थर, कंकड़, मिट्टी, लकड़ी आदि कोई पदार्थ इस प्रकार मत डालो

जिससे वहाँ कोई गन्दगी बढ़े और अन्य लोगों को भी असुविधा सहन करनी पड़े ।

(१७) इसी प्रकार से सार्वजनिक रास्ते गली आदि में कूड़ा, छिलके आदि फेंकना अनुचित है । यह नागरिकता के सामान्य नियमों को भंग करना है जिससे प्रत्येक व्यक्ति को घृणा और असुविधा होती है खासकर सड़क पर पड़े छिलकों के कारण तो हम राहगीरों को प्राय: पैर फिसलकर गिरते देखते हैं जिससे कभी–कभी बड़ी दुर्घटनाएं भी हो जाती हैं ।

सामाजिक व्यवहार और स्वच्छता

(१) नित्य प्रातःकाल उठ कर गुरुजनों, माता–पिता आदि के चरण स्पर्श करना भारतीय संस्कृति का विशिष्ट नियम है । इससे जहाँ हमको बुजुर्गों का शुभाशीर्वाद प्राप्त होता है, वहाँ आगामी पीढ़ी के बालकों को अनायास ही शिष्टाचार की ऐसी व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त होती है, जिससे उनके भीतर वह सद्‌गुण सदा के लिए जड़ जमा लेता है ।

(२) अपने घर पर किसी व्यक्ति के आने पर उसका प्रेमपूर्वक अभिवादन करना चाहिए और उसके सामने हाथ पैर फैला कर बेहूदा तरीके से नहीं बैठना चाहिए जिससे विनय और नम्रता का भाव ही प्रकट न हो ।

(३) आगंतुक सम्माननीय व्यक्तियों के सामने घर के किसी व्यक्ति या नौकर चाकर पर क्रोध प्रकट करना या गालियाँ बकना अनुचित है । यदि कोई ऐसा अवसर उपस्थित हो भी जाए तो उसके लिए हटकर अलग चले जाना ही उचित है ।

(४) अपने से बड़े या सम्माननीय व्यक्तियों के सामने कभी उनसे उच्च आसन पर नहीं बैठना चाहिए । भारतीय संस्कृति में गुरुजनों के निकट सदा भूमि पर नीचे बैठने का नियम है ।

(५) जँभाई, छींक, खाँसी आदि के आने पर मुँह के सामने रूमाल लगा लेना सभ्यता का चिह्न है । किसी के सामने इस प्रकार छींकना, खाँसना जिसके छींटे उस तक पहुँचें, बुरा है । इसी प्रकार पान आदि की पीक को

देखभाल कर एवं इसी के लिए नियत स्थान पर थूकना चाहिए । हर जगह थूकते–खखारते रहने वाले व्यक्तियों को लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं ।

(६) मार्ग में जाते समय यदि किसी परिचित सज्जन से भेंट हो जाए तो यथासम्भव पहले स्वयं अभिवादन करना चाहिए । वृद्ध व्यक्ति, रोगी, स्त्री, लंगड़े–लूले आदि के लिए रास्ते से हटकर मार्ग देना चाहिए ।

(७) किसी के घर जाकर घर के मालिक और अन्य लोगों की सुविधा का ध्यान रखकर ही व्यवहार करना चाहिए । ऐसे अवसर पर किसी का समय बर्बाद करना ठीक नहीं होता । कितने ही लोग बिना दूसरे व्यक्ति के हानि–लाभ का विचार किए घण्टों गपशप या निरर्थक बातों में गँवा देते हैं । यह बड़ी अनुचित बात है । आपके पास फालतू समय हो सकता है, पर संकोच में डालकर अन्य व्यक्ति का समय नष्ट करने का हमको कोई अधिकार नहीं ।

(८) सार्वजनिक उत्सव या सभा–सम्मेलन के बीच अकारण अकस्मात् उठकर चल देना असभ्यता का सूचक माना जाता है । इससे वहाँ की सुव्यवस्था में अंतर पड़ता है । अगर आपके पास समय की कमी हो तो या तो ऐसे अवसरों पर जाना ही नहीं चाहिए या पीछे की तरफ ऐसी जगह पर बैठना चाहिए जहाँ से उठकर चलने से किसी का ध्यान आकर्षित न हो इसी प्रकार से कथा, वार्ता, सभा आदि में सोने या ऊँघने लगना भी अनुचित है । ऐसे व्यक्ति अन्य लोगों की हँसी के पात्र बनते हैं और वे उनसे विरक्त होने लगते हैं ।

(९) पड़ौसियों के प्रति सदा प्रेम और शिष्टाचार का व्यवहार रखिए जरूरत पड़ने पर उनकी सब प्रकार से सहायता करने को प्रस्तुत रहें और यदि वह गरीब हो तो उसके सामने अपने वैभव का प्रदर्शन करके उसे लज्जित करने का प्रयत्न न करें । इसी प्रकार धनवान पड़ौसी के सामने अपनी विपत्तियों का रोना रोकर उसकी सहानुभूति प्राप्त करने का तरीका भी ठीक नहीं है । पड़ौसी से यथासंभव समानता का ही व्यवहार करना चाहिए और उनकी जो कुछ सहायता की जाए वह निःस्वार्थ भाव से और कर्तव्य समझकर की जानी चाहिए । यदि पड़ौसी की भावनाएँ आपके

विरुद्ध हो गयीं तो उससे आपकी बहुत बड़ी हानि हो सकती है ।

(१०) यदि किसी रोगी व्यक्ति के पास जाएँ तो उससे कभी उसके रोग को बढ़ा–चढ़ाकर बताने की चेष्टा न करें और न उसके सामने किसी प्रकार की निराशापूर्ण बातें करें । उस समय चिकित्सा करने वाले या उसकी दवा के संबंध में किसी तरह ही बुराई नहीं करनी चाहिए । इन बातों से रोगी का उपकार होने के बजाय अपकर ही होता है । रोगी के पास सदा प्रसन्न मुख मुद्रा में ही जाना चाहिए और उसके सामने सदा आशापूर्ण ढंग से ही बातें करनी चाहिए । रोगी व्यक्ति के पास अधिक देर तक बैठकर घरवार, व्यापार–व्यवसाय अथवा दुनियादारी की इधर–उधर की बातें छेड़कर वक्त खराब करना ठीक नहीं । जिन रोगियों की दशा गंभीर हो और जिनके पास जाने को डाक्टर ने मनाही की हो उनके पास अगर जाना भी पड़े तो कम समय ही ठहरना चाहिए ।

(११) रास्ते में चलते हुए कोई परिचित व्यक्ति मिल जाए तो उसे जोर–जोर से पुकार कर बुलाना ठीक नहीं । इसी प्रकार रास्ता चलते हुए या किसी जगह ठहरकर बहुत जोर से बातचीत, हँसी मजाक, ठहाका मारकर हँसना भी ठीक नहीं । इससे अन्य राहगीरों को बुरा लगता है । अनेक बार उन्हें सन्देह हो जाता है कि उन्हीं की हँसी की जा रही है ।

(१२) रास्ते में अनजान स्त्री के पीछे इस प्रकार नहीं चलना चाहिए जिससे उसे संकोच प्रतीत हो । अगर आप किसी स्त्री के पास से गुजरें तो बार–बार उसकी तरफ गर्दन घुमाकर देखना भी असभ्यता है । इसी प्रकार मकानों में बैठी या दालान अथवा छज्जों पर खड़ी स्त्रियों को ताकना और घूरना अशिष्टता का चिह्न है ।

(१३) मुसाफिर खाना, धर्मशाला, पार्क आदि सार्वजनिक स्थानों की सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए । ऐसे स्थानों में किसी तरह की गंदगी फैलाना या अपना काम पूरा हो जाने पर उन्हें गन्दी हालत में छोड़ जाना अनागरिकता का कार्य है । यदि दूसरों को भी ऐसा करते देखा जाए तो उनको नम्रतापूर्वक समझाकर ऐसा न करने से रोकने का प्रयत्न करना चाहिए ।

खानपान और स्वास्थ्य रक्षा :

(१) भोजन करने के स्थान का स्वच्छ और सुरुचिपूर्ण होना आवश्यक है । उस जगह ऐसा वातावरण अथवा पदार्थों का रहना, जिससे खाने वाले में विरक्ति या घृणा का भाव उत्पन्न हो, बुरा है ।

(२) भोजन करने से पूर्व हाथों को अच्छी तरह धोकर साफ कर लेना चाहिए । चाहे जैसे हाथों से खाने को बैठ जाना केवल स्वास्थ्य की दृष्टि से ही हानिकारक नहीं वरन् देखने वालों में विरक्ति उत्पन्न करता है ।

(३) भोजन करते समय खाने और पीने में "चप–चप" का शब्द करना शिष्टाचार के विपरीत माना जाता है । खाने में बहुत शीघ्रता करना या बड़े बड़े ग्रास मुँह में डालना भी खराब लगता है । खाते समय भोजन के पदार्थों में दोष निकालना एक बड़ा दुर्गुण है । इससे बनाने वाला या खिलाने वाला तो असंतुष्ट होता ही है, साथ ही यह एक प्रकार से अन्न देवका अपमान करना है, जिसे हमारे धर्मशास्त्रों में बड़ा निन्दनीय कहा है ।

(४) सदा दाहिने हाथ से ही खाना चाहिए जब तक दुर्घटनावश उसमें कोई बाधा उपस्थित न हो जाए । हाथ की उंगलियों को ऊपर तक साग दाल से भर लेना और उन्हें चाटते रहना भी सभ्यता के विरुद्ध है । इससे अन्य लोगों के मन में अरुचि का भाव उत्पन्न होता है ।

(५) पानी आदि पेय पदार्थ खड़े–खड़े पीना ठीक नहीं और बहुत शीघ्र गट–गट पी जाना भी बुरा है । शर्बत, पानी या अन्य पेय पीकर उस बर्तन को किसी के हाथ में देने के बजाय जमीन पर एक तरफ रख देना उचित है ।

(६) भोजन करते समय किसी ऐसी वस्तु का नाम नहीं लेना चाहिए जिससे किसी के मन में घृणा का भाव उत्पन्न हो । साथ ही किसी ऐसे भोज्य पदार्थ की प्रशंसा करना भी ठीक नहीं जो वहाँ न बना हो और जिससे वहाँ बने पदार्थ की त्रुटि प्रकट होती हो ।

(७) भोजन पूरी निश्चिन्तता और शान्ति के साथ करना चाहिए जिससे साथ के अन्य व्यक्ति भी प्रसन्नता का अनुभव करें ।

(८) खाते समय भोजन के पदार्थों का इधर–उधर जमीन पर

गिराना या कपड़े पर गिरा लेना सफाई और सभ्यता की कमी को प्रकट करता है ।

(९) बहुत लोगों के साथ एक पंक्ति में भोजन करते समय बहुत सोच समझकर बोलना चाहिए । ऐसे अवसर पर यदि किसी प्रकार का हँसी मजाक हो भी तो उसमें पूर्ण शिष्टता का भाव रखना आवश्यक है । ऐसे अवसर पर जो लोग दूसरों की निन्दा, अपवाद–संवाद संबंधी या लांछित करने वाली बातें करते हैं, उनको सज्जन नहीं कहा जा सकता ।

(१०) पतले और चिकने पदार्थों को हो सके तो चम्मच आदि से खाओ जिससे उनके चारों तरफ फैलने या गिरने की आशंका न रहे ।

(११) हमारे यहाँ भोजन करते समय मौन रहने की बड़ी महिमा बतलाई गई है, पर वर्तमान समय में दस–पाँच आदमियों के साथ भोजन करने को बैठने पर बिल्कुल न बोलना भी अच्छा नहीं माना जाता । तो भी ऐसे अवसर पर बहुत अधिक गपशप करना जिसमें भोजन भी ठीक तरह न किया जा सके, उचित नहीं ।

(१२) चलते–फिरते, घूमते–टहलते हुए खाना स्वास्थ्य की दृष्टि से तो हानिकारक है ही, सभ्यता के भी विपरीत है । इसी प्रकार सिवाय बीमारी की हालत के लेटकर या पड़े पड़े खाना भी अनुचित है ।

(१३) खाने–पीने की चीजों को लांघकर चलना बहुत बुरा है । इससे उनमें मिट्टी–धूल या कोई अन्य गंदी चीजें गिर जाने की संभावना रहती है ।

बातचीत और रहन–सहन

(१) जहाँ दो चार व्यक्ति निजी बात कर रहे हों वहाँ पास जाकर बैठना अनुचित है और बिना पूछे किसी प्रकार सम्मति देना भी मूर्खता है ।

(२) बातचीत करते समय अगर कोई अनुचित या गलत बात मुँह से निकल जाए तो उसके लिए तुरन्त क्षमा प्रार्थना कर लेनी चाहिए ।

(३) बातचीत करते समय केवल अपने आप ही न बोलते रहिए, दूसरों को भी उतना ही मौका दीजिए । जो व्यक्ति दूसरों को न

बोलने देकर अपनी ही बात सुनाते रहते हैं उनसे कोई बात करना पसन्द नहीं करता ।

(४) बातचीत में किसी से मतभेद होने पर कठोर उत्तर देकर शीघ्र ही उसे झगड़े का रूप दे देना मूर्खता है । ऐसे अवसर पर यदि किसी को गलती भी बतलानी हो और जो कुछ कहना हो तो विनम्र शब्दों में ही कहना चाहिए "मेरी राय में आप भूल रहे हैं" या "आपको ठीक सूचना नहीं मिली" आदि । इस प्रकार के व्यवहार से कटुता नहीं बढ़ती और आगे चलकर मत भेदों के मिटने में सहायता मिलती है ।

(५) अनेक लोगों को साधारण बातचीत में भी अकारण गाली बकने की आदत पड़ जाती है । उसे न वे बुरा समझते हैं और न उनके स्तर के अन्य लोगों को उसमें कोई दोष जान पड़ता है । पर इस तरह मुँह से सदैव गाली या अश्लील शब्द निकालते रहना सभ्यता के विपरीत है । इसी प्रकार मित्र मण्डली से हँसी मजाक में भी शिष्टता की सीमा का भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए । हो सकता है कि आपस के दो–चार अंतरंग मित्रों में ऐसी बातचीत 'प्रेमालाप' समझी जाए पर ऐसे लोगों के सामने भी आपके मुँह से गन्दे शब्द निकल सकते हैं जो उन्हें सज्जनोचित नहीं मानते । इसमें आपकी प्रतिष्ठा की हानि होगी ।

(६) जिस किसी के साथ वायदा करो उसे पूरा करने का सदैव यथाशक्ति प्रयत्न करो । जिस काम को करने का विचार न हो उसका किसी को विश्वास मत दिलाओ ।

(७) बातचीत के समय बीच बीच में "तकियाककलाम" के रूप में कोई अनाश्यक शब्द बोलते जाना या मुँह, नाक, कान, आँख, हाथ आदि अंगों को मटकाते जाना अविकसित बुद्धि के व्यक्तियों का लक्षण है ।

(८) किसी बात को बहुत अधिक मत बढ़ाओ । बहुत से लोगों की आदत होती है कि निस्सार बात को या जिससे हमारा कोई सम्बंध नहीं ऐसी बात को बड़े विस्तार के साथ कहने लग जाते हैं, चाहे सुनने वाले को वह बुरी लगती हो तो भी बार–बार रोककर जबर्दस्ती अपनी बात सुनाते हैं । कई लोग श्रोता के सोने या ऊँघते लग जाने

पर भी अपनी बातों का ताँता बन्द नहीं करते । ये सब ढंग वार्तालाप के दोष समझे जाते हैं ।

(९) यद्यपि बात–बात में अंग्रेजी की तरह "थैंक्यू" (धन्यवाद) कहते रहना हमारे देश की रीति नहीं है, तो भी किसी के उपकार या सहायता के लिए उसके प्रति किसी प्रकार का आभार प्रकट करना एक सज्जनोचित नियम है ।

(१०) किसी के मुँह पर उसकी प्रशंसा करना कोई बहुत अच्छी बात नहीं है । यदि कोई आपके सामने ही आपकी प्रशंसा करने लगे तो उसको रोक देना या सामने से हट जाना चाहिए ।

(११) यदि कोई व्यक्ति किसी से बातचीत कर रहा हो तो बीच में हस्तक्षेप करके अपनी बात छेड़ देना उचित नहीं कहा जा सकता । इसी प्रकार एक आदमी से बातचीत को अधूरा छोड़कर दूसरे से बात प्रारम्भ कर देना भी नियम के विरुद्ध है ।

वेश–भूषा और चाल–ढाल

(१) अपने देश की पोशाक पहिनना बड़े गौरव का विषय है । किसी प्रकार का शौक या लालच के कारण विदेशी पोशाक की नकल करना अपनी हीनता प्रकट करना ही माना जाएगा ।

(२) वर्तमान समय में कितने ही पुरुष और स्त्री फैशन के भक्त बन कर जिस प्रकार विदेशी वस्त्रों का प्रयोग करने लगे हैं वह अशोभनीय है । विशेषकर अनेक स्त्रियों की चुस्त पोशाक तो भारतीय संस्कृति की दृष्टि से सर्वथा हेय ही कही जाएगी । अनेक बार ऐसे कपड़े जब पसीने या वर्षा के कारण शरीर से चिपट जाते हैं तो स्त्री की नग्नता का प्रदर्शन होने लगता है । ऐसी स्त्रियाँ सज्जन पुरुषों के समक्ष अपना सम्मान स्वयं कम करती हैं ।

(३) बहुत से लोग अपना बड़प्पन प्रकट करने के लिए दिन में बार–बार कपड़े बदलते रहते हैं । इसी प्रकार कई स्त्रियाँ भी जब तक दिन में तीन–चार बार साड़ियाँ नहीं बदल लेतीं तब तक अपनी शान में कमी ही अनुभव करती रहती हैं । वास्तव में यह एक ओछेपन की प्रवृत्ति

है । कपड़े साफ सुथरे और अपनी स्थिति के अनुसार मूल्यवान पहिनना और बात है, पर अमीरी प्रकट करने के भाव से ज्यादा चमक–दमक दिखलाना और ऐसा करना कभी प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता ।

(४) सार्वजनिक सम्मेलनों और निजी उत्सवों में अवसर के अनुकूल पोशाक ही उचित है । जैसे धार्मिक आयोजनों में यदि हैटकोट आदि विदेशी पोशाक पहनकर जाया जाए तो उपहासास्पद जान पड़ेगा । इसी प्रकार किसी गरीब या मध्यम श्रेणी के यहाँ किसी उत्सव में बहुत अधिक कीमती और तड़क–भड़क के वस्त्र पहिनकर जाना भी एक प्रकार से निरर्थक ही है ।

शिष्टाचार की प्रवृत्ति स्वाभाविक हो

शिष्टाचार की भावना और नियमों का विवेचन करने से यह प्रतीत होता है कि इसका ठीक पालन करना वही व्यक्ति जानता है जिसे बाल्यावस्था से इसकी प्रेरणा दी गई हो और अभ्यास कराया गया हो । जो लोग यह सोचते हैं कि घर के भीतर आपस में शिष्टाचार दिखाने की क्या आवश्यकता है, वे बड़ी भूल करते हैं । यदि बालकों को आरंभिक जीवन में ही इसकी प्रेरणा नहीं दी जाएगी और वे आपस में अथवा अपने माँ–बाप, बड़े भाई से अशिष्टता का व्यवहार करते रहेंगे तो आगे चलकर उनके लिए बाहर वालों के साथ भी शिष्टाचार के नियमों का पालन करना असंभव होगा । जिन घरों में बड़े लोग आपस में लड़ते–झगड़ते रहते हैं, परस्पर अशिष्ट व्यवहार किया करते हैं उनके बच्चे भी उद्दण्ड और अविनयशील बन जाते हैं और दूसरों के साथ प्रायः असभ्यता का व्यवहार करने में संकोच नहीं करते ।

कुछ अधिक आयु होने पर जब बालक स्कूल जाने लगते हैं तब शिक्षकों पर यह उत्तरदायित्व आता है कि वे बालकों को शिष्ट, सुशील और सदाचारी होने की शिक्षा दें । यद्यपि स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों में कितने ही पाठ इन सद्गुणों की शिक्षा के संबंध में भी रहते हैं, पर मास्टर लोग उनको तोते की तरह रटा देते हैं, उनके वास्तविक तथ्य को हृदयंगम कराने की कोई चेष्टा नहीं करते और मास्टरों से इसकी आशा भी कैसे की

जाए, जब वे स्वयं इस सम्बन्ध में न तो विशेष जानकारी रखते हैं, न तदनुसार आचरण करते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि स्कूल में लड़का जैसे तैसे बड़ा होता जाता है वह उद्दण्डता, उच्छृंखलता और अविनयशीलता सीखता जाता है । आजकल तो अधिकांश छात्र ऐसे दिखलाई पड़ते हैं जो मास्टरों के पीछे ही नहीं उनके सामने भी अशिष्टता की बातें करने में संकोच नहीं करते । कभी कभी तो परिस्थिति बहुत गम्भीर हो जाती है जब विद्यार्थी तक उद्दण्ड हो जाते हैं कि मास्टरों पर आक्रमण करके उनको शारीरिक आघात पहुँचाते हैं या इससे भी भयंकर कृत्य कर डालते हैं ।

ऐसे समय में इस बात की आवश्यकता अनिवार्य रूप धारण कर जाती है कि बालकों को छोटी आयु से ही सुशील बनाने की ओर पूरा ध्यान दिया जाए । देखने में यह एक साधारण बात प्रतीत होती है पर यदि यह विचार किया जाए कि कुछ समय बाद ये ही लड़के बड़े होकर देश के नागरिक बनेंगे और शासन तथा समाज के संचालन का उत्तरदायित्व इन्हीं के कन्धों पर आएगा, तो इसका महत्व बहुत बढ़ जाता है । अशिष्ट और असंयत व्यक्ति अपने लिए ही हानिकारक नहीं होते वरन् वे अपने राष्ट्र और समाज के सम्मान तथा प्रतिष्ठा को घटाने वाले सिद्ध होते हैं ।

इस परिस्थिति के सुधार का एकमात्र मार्ग यही है कि बड़ी आयु के व्यक्ति अपने रहन सहन और व्यवहार में सुधार करें । हमको यह निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि सबसे बड़ी शिक्षा उदाहरण द्वारा दी जा सकती है । छोटी उम्र के लड़के प्रायः सब तरह के गुण और दोष घर वालों से ही सीखते हैं । जिस घर का जैसा घटिया या बढ़िया वातावरण होता है उसके बालक अधिकांश उसी में ढल जाते हैं । इसलिए हम यदि स्वयं शिष्टाचार और सद्व्यवहार के नियमों का पालन करने लगें तो बालकों पर उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता । साथ ही अशिष्ट लोगों के संसर्ग और कुसंगति से बालकों को अलग रखने की सावधानी भी रखी जाए । हमको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि बालकों की मनोभूमि में जैसा बीज आरम्भ में बो दिया जाता है वैसा फल बड़े होने पर

उत्पन्न होता है । यदि हम अपनी सन्तान को आरम्भ से ही दुर्गुणों और दोषों से बचाकर शिष्टता, सभ्यता, सदाचार की शिक्षा देंगे तो बड़े होने पर वे अवश्य ही श्रेष्ठ और सफल नागरिक सिद्ध होंगे ।

शिष्टता मानवता का लक्षण है

यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाए तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि शिष्टता ही मानवता का प्रमुख लक्षण है । पशु–पक्षियों को तो इस विषय का किंचित भी ज्ञान हीं होता । उनका जीवन पूर्ण रूप से नैसर्गिक होता है इसलिए वे अपने निश्चित रहन सहन से जरा भी नहीं हट सकते । पशुओं की क्या बात बुद्धि से शून्य असभ्य जातियों के व्यक्ति भी इसी प्रकार का शिष्टाचार और सद्व्यवहार नहीं जानते जिससे अन्य व्यक्तियों को प्रसन्नता प्राप्त हो सके । अफ्रीका के घोर अरण्य में रहने वाले हब्शियों के सम्बन्ध में मन्टेरो नामक योरोपियन लेखक ने कहा है "हब्शी लोग प्रेम, अनुराग अथवा ईर्ष्या का नाम भी नहीं जानते । उनकी भाषा में अनुराग, प्रेम का सूचक कोई शब्द ही नहीं है । सरजानवालक ने अफ्रीका के ही ' 'हटेनटट" जाति वालों का वर्णन करते हुए बतलाया कि वे लोग एक दूसरे से इतने अधिक उदासीन और निर्भय रहते हैं कि उन्हें देखकर आप यही समझेंगे कि उनमें प्रेम और शिष्टता जैसी कोई चीज नहीं है ।"

हमारे लिए यह बड़े सौभाग्य का विषय है कि इस दृष्टि से हमारे पूर्वज अति प्राचीन काल से शिष्टाचार और सभ्यता के नियमों का पालन करते आए हैं और आज भी उनके इस उत्तराधिकार का अंश जहाँ तहाँ देखने को मिलता है । भारतवर्ष का अतिथि सत्कार, दान प्रणाली, गुरुजनों की पूजा और सेवा आदि बातें जगत प्रसिद्ध हैं, ये सब शिष्टता के ही अंश हैं । प्राचीनकाल में जिस प्रकार पैर धुलाकर अर्घ्य, आचमन, आसन आदि से जिस प्रकार किसी अनजान अतिथि की खातिर की जाती थी उसका उदाहरण संसार में कहीं नहीं मिल सकता । अनजान व्यक्तियों को तो एकाएक उस पर विश्वास भी नहीं हो सकता । इसी प्रकार गुरु माता की पूजा और सेवा सुश्रुषा का यहाँ जो विधान बनाया था वह भी शिष्ट व्यवहार का उच्चतम नमूना ही माना जा सकता है । इसी तथ्य को महात्मा

गाँधी ने आज से ५२ वर्ष पहले इन्दौर के एक बड़े अधिवेशन में प्रतिपादित करते हुए कहा था–

"मैं आप लोगों से यह कहने आया हूँ कि आप अपनी सभ्यता पर विश्वास करें और उस पर दृढ़ रहें । ऐसा करने से हिन्दुस्तान सारे संसार पर साम्राज्य कर लेगा । हम ऐसे देश के रहने वाले हैं जो अभी तक अपनी प्राचीन सभ्यता पर निर्भर रह सके हैं । योरोप की सभ्यता तो आसुरी है । अगर हम योरोप की सभ्यता का अनुकरण करेंगे तो हमारा नाश हो जाएगा । मैं इन सूर्य नारायण से (जो उदय हो रहे हैं) प्रार्थना करता हूँ कि भारत अपनी सभ्यता न छोड़े ।

हमारे प्राचीन शास्त्रों और वेदों में जगह–जगह यही आदेश दिया गया है कि हम समाज में रहते हुए न कोई अनुचित कर्म करें न किसी का अनहित करें, क्योंकि मनुष्य के लिए सबसे बड़ा कर्त्तव्य और प्रशंसनीय कार्य यही है कि वह दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार न करे कि जिससे उनका चित्त प्रसन्न हो । हमको दूसरों के प्रति किस प्रकार की सद्भावना रखनी चाहिए इस प्रकार का उदाहरण देने के लिए कुछ लोग गाँधी जी की मेज पर तीन बन्दरों की मूर्तियों का जिक्र किया करते हैं । इनमें से एक ने अपना मुँह बंद कर रखा है एक ने कानों तथा दूसरे ने आँखों को बन्द कर रखा है । उनका आशय यह है कि मनुष्य को न तो किसी से कठोर शब्द उच्चारित करने चाहिए, न किसी की निन्दा सुननी चाहिए, न किसी के बुरे कार्य को देखना चाहिए । कहा जाता है कि ये तीन बन्दर कोई चीन निवासी गाँधी जी को भेंट दे गया था । पर हमारे वेदों में कितने ही हजार वर्ष पहले इस बात को बहुत मार्मिक शब्दों में कह दिया था–

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा, भद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवा ꣳ सस्तनूभिः व्यशेमहि देव हितं यदायुः ।।

अर्थात्–हम कानों से श्रेष्ठ बातें सुनें, आँखों से अच्छी बातें देखें और समस्त अंगों के द्वारा ईश्वर के प्रिय उत्तम कार्य ही करते रहें ।

यही भारतवर्ष की प्राचीनता का आदर्श है । आजकल बात–बात में थेंक्यू' धन्यवाद का उच्चारण करते हुए भी प्रायः कहने वाले के मन में

तनिक भी सद्भावना और सहानुभूति नहीं होती । बल्कि बहुत से व्यक्ति तो 'धन्यवाद' कहते और ऊपर से बड़ा शिष्टाचार दिखलाते हुए मन में द्वेष भावना भी रखे रहते हैं । चाहे विदेशी सभ्यता के पक्षपाती इसका समर्थन करें पर हम शिष्टाचार का अर्थ बाहरी आदर भाव के साथ ही हृदय में भी सद्भावनाओं का होना समझते और वस्तुतः किसी व्यक्ति को वही शिष्टाचार प्रसन्न कर सकता है जो आन्तरिक भावों से युक्त होता है ।

हमारा आशय यह भी नहीं कि हम प्राचीनता के साथ इतने अधिक लिपटे रहें कि वर्तमान समय की आवश्यकताओं और परिस्थितियों को भूल जाएं । प्राचीन समय में वनों में रहकर अध्ययन करने वाले विद्यार्थी गुरु को जिस प्रकार सदैव साष्टांग दण्डवत् करते थे । आजकल स्कूलों तथा कालेजों के विद्यार्थी चाहने पर भी वैसा नहीं कर सकेंगे । साथ ही ठीक समय पर प्रत्येक कार्य करना, किसी का वक्त व्यर्थ में खराब न करना, अपने वचन का यथावत पालन करना आदि जो अच्छे गुण विदेशियों में हैं उनको भी ग्रहण करना अनुचित नहीं कहा जा सकता । इस मार्ग पर चलने से हम अवश्य शिष्टता के सद्गुण एकत्रित कर सकेंगे ।

शिष्ट एवं सभ्य व्यवहार ही मनुष्य की शोभा है

शील एवं शिष्टता मनुष्य के मानसिक विकास के परिचायक हैं । जिस अनुपात से मनुष्य का मानसिक विकास होता है उसी अनुपात से वह पशुता से उठकर मनुष्यता की ओर बढ़ता जाता है । इस प्रकार एक दिन वह शनैः शनैः बढ़ता हुआ अपने आत्म स्वरूप तक पहुँचकर निरन्तर सुख–शान्ति का अधिकारी बन जाता है ।

मनोविकास का अर्थ है–मनोविकारों का दूर होना । काम, क्रोध, मद, लोभ आदि विकार जितनी मात्रा में कम होते जाते हैं, उतनी ही मात्रा में मनोविकास होता जाता है । दुःशीलता एवं अशिष्टता के कारण भी ये मनोविकार ही हैं । काम मनुष्य को शील रहित बना देता है । एक बार उसकी काम जन्य दुःशीलता अन्य किसी पर प्रकट नहीं होती तो अपनी आत्मा पर तो प्रकट हो जाती है । वह अपनी आत्मा के प्रति तो अशिष्ट एवम् असभ्य हो ही जाता है । कामनाओं के रूप में भी काम मनुष्य में

तीव्रता एवं लिप्सा उत्पन्न कर देता है । इससे मनुष्य में छल, कपट, शोषण, अपहरण आदि के दोष उत्पन्न हो जाते हैं ।

क्रोध तो मनुष्य को एक प्रकार से सामयिक पागल ही बना देता है । क्रोध होने पर मनुष्य शिष्टता तथा सभ्यता की सारी सीमाएँ तक भूल जाता है । वह न कहने योग्य बातें कहने और न करने योग्य काम कर बैठता है । क्रोध में लोग छोटों से तो दुर्व्यवहार करते ही हैं बड़ों के साथ भी अशिष्टता का व्यवहार कर बैठते हैं । क्रोध में मनुष्य बड़ों का बडप्पन और आदरणीयों की गुरुता का भी मान नहीं करता । लोग अपने बड़े भाइयों और यहाँ तक कि माता–पिता को भी बुरा भला कहने लगते हैं । क्रोध, धृष्टता एवं अशिष्टता का बहुत बड़ा कारण है ।

मद मनुष्य को संसार में किसी को भी शालीन व्यवहार के योग्य नहीं समझने देता । मद का नशा क्रोध के वेग से बुरा होता है । जिसे धन, वैभाव, रूप, यौवन, शक्ति, बल अथवा अधिकारों का अहंकार रहता है, वह सचराचर जगत को तृणवत् ही समझा करता है । किसी से सीधे मुँह बात करना तो वह जानता ही नहीं । अहंकार मद के मद में मतवाले व्यक्ति बहुधा दया, क्षमा, सहानुभूति एवं संवेदना जैसे मानवी गुणों को तिलांजलि दे देते हैं । जरा सी प्रतिकूलता पाकर अहंकारी व्यक्ति आपे से बाहर हो जाता है और बड़े बड़े अनर्थ कर डालने पर उतर आता है । अनाचार, अत्याचार तथा अनीति आदि दोष प्रायः अहंकार से ही जन्म पाते हैं । मनुष्य को आततायी भी बना देता है । वह अपने दम्भ की तुष्टि में दूसरों की सुख सुविधा का भी ध्यान नहीं रखना । वह अपनी प्रसन्नता के स्वार्थ में यह तक विचार नहीं कर पाता कि मेरे द्वारा अमुक व्यक्ति को अमुक कष्ट अथवा क्लेश हो सकता है । अहंकारी एक अपने को प्रसन्न करने के लिए हजारों पर अत्याचार करने उनका अधिकार छीनने में संकोच नहीं करता । अहंकार जैसा भयानक रोग मनुष्य को किस सीमा तक शील एवं शिष्टता से दूर हटा दे सकता है इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता ।

मनोविकारों पर विजय पाने का साधारण सा उपाय है–अपने अंदर

सभ्यता, शिष्टता तथा नम्रता का भाव उत्पन्न करना । शिष्टता में एक अनुपम मिठास रहती है । एक बार शिष्ट व्यवहार अपनी मधुरता से अनेक बार शिष्टता का व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है । जो सुशील हैं सभ्य एवं शिष्ट हैं, वह न केवल औरों को ही सुखी एवं शीतल बनाता है बल्कि अपने को भी सुखी बनाता है । शील एवं शिष्टता दैवी गुण हैं इनका अवतरण कर लेने से मनुष्य सहज ही मानसिक विकास की ओर बढ़ने लगता है । अपने मनोविकार के लिए एक सच्चे, शिष्ट तथा शालीन व्यक्ति को किसी जप साधना अथवा पूजा अर्चा की जरूरत नहीं पड़ती । शिष्ट व्यवहार स्वयं ही अपने में एक पूजा है, एक उपासना है । एक उपासक केवल एक ईश्वर की कल्पना करके उसकी पूजा करता है उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया करता है, किन्तु एक नम्र एवं शिष्ट व्यक्ति न जाने कितनी आत्माओं को प्रसन्न किया करता है जो कि ईश्वर का अंश होता है । उपासक एक की पूजा करता है और शिष्ट व्यक्ति अपने शालीन व्यवहार से सार्वजनिक विराट भगवान की पूजा किया करता है । शिष्ट व्यवहार को केवल व्यवहार नहीं, पूजा के भाव से ही देखना चाहिए ।

भगवान की बनाई हुई चराचरमयी सृष्टि अपने व्यवहार से ही सुरक्षित एवं शाश्वत बनी हुई है । सृष्टि में अत्यक्तता आते ही प्रलय एवं विनाश की सम्भावना उपस्थित हो जाती है । मनुष्यों में जब तक शिष्टता एवं सभ्यता का उदय नहीं हुआ वह भी पशुओं की कोटि में बना रहा और उन्हीं की तरह जंगली जीवन व्यतीत करता रहा । ज्यों ज्यों उसमें सभ्यता एवं शिष्टता की वृद्धि होती गई, उसका मनोविकास होता गया तभी वह आज की उन्नत स्थिति में पहुँच सका । अपनी सभ्यता एवं शिष्टता के जिन गुणों के आधार पर मनुष्य पशुता से वास्तविक मनुष्यता में आ सका है उसका त्याग कर देने से स्वाभाविक है कि वह अपनी आदिम अवस्था में वापस जाने लगे । आज भी जो व्यक्ति अश्लील, अशिष्ट अथवा असभ्य व्यवहार किया करता है उसे लोग नर–पशु ही मानते हैं । यह शील एवं शिष्टता का ही चमत्कार है कि मनुष्य पारस्परिक सहयोग से अपने जीवन में इतनी सुख–सुविधाओं का समावेश कर सका है । यदि जंगलियों की तरह वे एक

दूसरे से धृष्ट तथा अभद्र व्यवहार कर रहे तो कैसे तो मिलजुलकर रहते ? कैसे मिलकर खेती तथा व्यवसाय करते ? और मिलजुलकर विचार विमर्श करते हुए सभ्यता एवं संस्कृति का विकास कर पाते ?

आत्मिक उन्नति के साथ साथ शील एवं शिष्टता भौतिक उन्नति का भी आधार है । जो अशिष्ट है, असभ्य अथवा शीलरहित है वह इस जीवन में किसी प्रकार उन्नति नहीं कर सकता । नौकरी, व्यवसाय आदि किसी भी क्षेत्र में किसी धृष्ट की सफलता का कोई उदाहरण आज तक नहीं पाया है । धृष्ट अशिष्ट व्यक्ति को कोई भी पसंद नहीं करता और न कोई उससे सहयोग ही करना चाहेगा । मनुष्य के बड़े से बड़े गुण, बड़ी से बड़ी क्षमताएं अशिष्टता के दोष से दूषित होकर नष्ट हो जाती हैं । बहुत कुछ उपयोगी होने पर भी दुष्ट अथवा दुर्गुणी व्यक्ति के पास कोई जाना तक पसन्द नहीं करेगा । अशिष्ट व्यक्ति एक प्रकार से समाज से बहिष्कृत ही रहता है ।

धृष्ट अथवा अशिष्ट विद्यार्थी बहुत कम सफल होते हैं । कर्कशा पत्नी कभी भी पति का प्यार नहीं पा सकती और कठोर पति कभी भी गृहस्थी की सुख-शान्ति नसीब नहीं कर सकता । धृष्ट और अशिष्ट बच्चे और तो और स्वयं अपने माता पिता के लिए भी घृणा के पात्र बन जाते हैं । असफलता एवं अशान्ति, अशिष्टता एवं असभ्यता का सुनिश्चित परिणाम है ।

इसके विपरीत विनम्रता, मधुरता, शिष्टता एवं सभ्यतापूर्ण व्यवहार मनुष्य को सफलता के उच्च शिखर पर पहुँचा देने में समर्थ होते हैं । निर्धन होने पर भी शिष्ट विद्यार्थी की शिक्षा रुकने नहीं पाती । किसी नौकरी हेतु शिष्टता योग्यता की कमी को भी पूरा कर देती है । जो स्वयं सही मायनों में शिष्ट एवं सभ्य है उसे किसी काम के लिए किसी की सिफारिश की आवश्यकता नहीं पड़ती । विनम्रता एवं मधुरता क्रूर से क्रूर शत्रु को जीत लिया करती है । सहयोग, सहायता एवं शीलवान व्यक्ति की विरासत ही माननी चाहिए । घर बाहर, देश विदेश, कहीं भी क्यों न रहे विनम्रता एवं शिष्टता मनुष्य को मित्र की तरह हर जगह सहायता करती रहती है ।

विनम्र व्यवहार विरोधियों के बीच भी अपना मार्ग बना लिया करता है ।

जो शिष्ट एवं सभ्य होता है वह सहिष्णु भी होता है । शिष्ट दूसरे से तो दुःखदायी व्यवहार नहीं करता है यदि उसके साथ भी दुःखद व्यवहार किया जाता है तब भी वह अधिक दुःखी नहीं होता, न तो उस पर कोई अप्रिय प्रतिक्रिया होती है और न उसे क्रोध ही आता है । विपरीत व्यवहार में भी उसकी मनःशान्ति अक्षुण्य बनी रहती है । बदले में बुरा व्यवहार न करके वह अपने धृष्ट विरोधी को भी लज्जित कर देता है । शिष्ट एवं सभ्य के सम्मुख संघर्ष की परिस्थितियाँ बहुत कम आती हैं और यदि आती भी हैं तो वे उलझकर अधिक भयानक नहीं बनने पातीं । वह बिना किसी हानि के उन्हें सुलझा लिया करता है । इस प्रकार कोई भी शिष्ट एवं सभ्य व्यक्ति सदा ही संघर्ष हीन, निर्द्वन्द्व एवं सौहार्दपूर्ण सुख का जीवन व्यतीत किया करता है । मनुष्य को चाहिए कि वह स्थाई सुख–शान्ति के लिए विकारों को दबाकर शिष्ट एवं सभ्य व्यवहार के अभ्यास से विकारों पर विजय प्राप्त करे ।

सज्जन व्यक्ति किसी से ईर्ष्या–द्वेष नहीं रखता, अपने गुण के विकास पर विश्वास रखता है । अपने में जो थोड़ी बहुत गुणों की पूँजी है उसी पर प्रसन्नता अनुभव करे और उसे विकसित करे तो मनुष्य एक दिन महानता की मंजिल तक पहुँच जाता है । विचार के अनुसार ही चेष्टाएँ जागृत होती हैं । सत्कर्मों के विस्तार से आत्म विकास होता है । आत्म विकास से स्वर्गीय सुख की रसानुभूति होती है । पुण्य को प्रोत्साहन और पाप की उपेक्षा आत्मानुभूति के सदुद्देश्य से प्रेरित होकर की गई है । अध्यात्म की पहली शिक्षा यह है कि मनुष्य निरन्तर मंगलमय कामनाएं करे और सदाचारी बनें । यह तभी संभव है जब सत्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिले ।

मानव जीवन की सार्थकता के लिए आचार पवित्रता अनिवार्य है । केवल मात्र ज्ञान भक्ति और पूजा से मनुष्य का विकास एवं उत्थान नहीं हो सकता । पूजा, भक्ति और ज्ञान की उच्चता व श्रेष्ठता का व्यावहारिक रूप से प्रमाण देना पड़ता है । जिसके व्यवहार गंदे होते हैं उससे सभी घृणा करते हैं जहाँ वातावरण गन्दा हैं वहाँ जाने से सभी को झिझक होती है ।

शरीर गन्दा रहे तो स्वस्थ रहना जिस प्रकार कठिन हो जाता है उसी प्रकार आचरण की पवित्रता के अभाव में सज्जनता, प्रेम और सद्व्यवहार के भाव नहीं उठ सकते । आचार–विचार की पवित्रता से ही व्यक्ति का सम्मान व प्रतिष्ठा होती है ।

सज्जन तथा शिष्ट व्यक्ति के मन, वचन, कर्म में सर्वत्र शुचिता के दर्शन होते हैं । ऐसा व्यक्ति सभी के हित व कल्याण की बात सोचता है । सभी की भलाई में अपनी भलाई मानता है । इससे दैवी सम्पत्तियों का विस्तार होता है और सुख की परिस्थितियाँ बढ़ने लगती हैं । पूर्वकाल में लोग अधिक सुखी होते थे इसका कारण लोगों के आचार विचार में पर्याप्त पवित्रता थी । अनैतिक कर्मों के बाहुल्य के कारण इस समय दुःखों का बाहुल्य हो रहा है । समय सदा एक सा नहीं रहता है किन्तु आचरण और विचारों की भिन्नता के फलस्वरूप एक समय की परिस्थितियाँ सुखद बन जाती हैं और इससे प्रतिकूल परिस्थितियाँ कष्ट व क्लेशदायक रहती हैं ।

मनुष्य स्वतः अच्छा या बुरा नहीं है । यह ढलाव तो विचारों के साँचे में होता है । गीली मिट्टी को विभिन्न प्रकार के साँचे में दबाकर भाँति भाँति के खिलौने बनाते हैं । विचारों के साँचे में व्यक्ति का निर्माण होता है । दूषित स्वार्थपूर्ण विचारों से मनुष्य हीन बनता है । दुष्टतापूर्ण दुष्कर्मों के कारण वह दुःख और त्रास पाता है । मंगल मिलन व शुभ कर्मों से आन्तरिक सौन्दर्य के दर्शन होते हैं । श्री–समृद्धि और सफलता का सुख मिलता है ।

बुरे विचारों की कीचड़ में फँसा हुआ व्यक्ति अपना प्रभाव खो देता है । यद्यपि उसकी नैसर्गिक पवित्रता नष्ट नहीं हुई है, उसकी शक्ति ज्यों की त्यों बनी हुई है किन्तु मान गिर गया, कीमत गिर गई । कुविचार और कुकर्म सदैव मनुष्य को अधोगामी ही बनाते हैं ।

देखने में आता है कि लोग प्रायः दूसरों के ऐब निकालते रहते हैं । यह क्रोधी है, वह निकम्मा है । दृढ़तापूर्वक न्यायिक दृष्टि से निरीक्षण करने पर आप में ही अनेकों दोष दिखाई दे जाते हैं, नहीं तो यह छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति ही किस अपराध से कम है । निरन्तर बुरे विचार करते रहने से अशुभ कर्म ही बन सकते हैं ।

जीवन में शिष्टाचार की आवश्यकता

शिष्टाचार जीवन का दर्पण है जिससे हमारे व्यक्तित्व का स्वरूप दिखाई देता है । शिष्टाचार के माध्यम से ही मनुष्य का प्रथम परिचय समाज को होता है । अच्छा या बुरा, दूसरों पर कैसा प्रभाव पड़ता है, यह हमारे उस व्यवहार पर निर्भर करता है जो हम दूसरों से करते हैं । शिष्ट व्यवहार का समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ता है, दूसरों की सद्भावना, आत्मीयता और सहयोग की प्राप्ति होती है । साथ ही समाज में लोकप्रियता बढ़ती है । इसके विपरीत अशिष्ट व्यवहार दूसरों में घृणा–द्वेष पैदा कर देता है । अशिष्ट व्यक्ति को शायद ही कोई आत्मीय सहयोगी मिलता हो । अशिष्टता से अपने भी पराए बन जाते हैं । सहयोगी भी पीछा छुड़ा लेते हैं । यहाँ तक कि दूसरे लोग व्यक्तित्व के विकास को अवरुद्ध कर देते हैं, साथ ही हमें समाज में अकेला छोड़ देते डैं इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य में कई विशेषताएँ अर्जित की जा सकती हैं जो जीवन प्रथ पर आगे बढ़ने के लिए बड़ी उपयोगी और आवश्यक हैं । शिष्टाचार और सद्व्यवहार से विरोधियों को भी अपना बनाया जा सकता है । यह वह अमृत है जिससे कटुता, विरोध और शत्रुता पिघल जाती है ।

शिष्टाचार व्यवहार की वह रीति–नीति है, जिसमें व्यक्ति और समाज की आन्तरिक सभ्यता और संस्कृति के दर्शन होते हैं । परस्पर बातचीत, सम्बोधन से लेकर दूसरों की सेवा, त्याग, आदर भावनाएँ तक शिष्टाचार के मापदण्ड हैं जिस पर सभ्यता और संस्कृति का भवन निर्माण होता है । एक दूसरे के प्रति सद्भावना, सहानुभूति, सहयोग आदि शिष्टाचार के मूलाधार हैं । इन मूल भावनाओं से प्रेरित होकर दूसरों के प्रति नम्र, विनयशील, संयत, आदरपूर्ण उदार आचरण ही शिष्टाचार है ।

शिष्टाचार का क्षेत्र उतना ही व्यापक है, जितना हमारे जीवन व्यवहार का । समाज में जहाँ–जहाँ भी हमारा दूसरे व्यक्ति से संपर्क होता है, वहीं शिष्टाचार की आवश्यकता पड़ती है । घर में परिवार के छोटे से लेकर बड़े सदस्यों के साथ, सभी जगह तो हमें शिष्टाचार की आवश्यकता पड़ती है । जहाँ भी एक से अधिक व्यक्तियों का सम्पर्क हो वहीं शिष्टाचार की अपेक्षा

रहती है । हमारा सम्पूर्ण जीवन कार्य–व्यापार, मिलना जुलना सभी में शिष्ट व्यवहार की आवश्यकता पड़ती है ।

सद्व्यवहार, सदाचार आदि शिष्टाचार के ही अंग हैं । शिष्टाचारी मन, वचन, कर्म से किसी को हानि नहीं पहुँचाता । वह दुर्वचन कभी नहीं बोलता । न मन से किसी का बुरा चाहता है । जिससे किसी का दिल दुखे, ऐसा कार्य भी वह नहीं करता । विनय और मधुरता युक्त व्यवहार ही उसके जीवन का अंग होता है । किसी तरह के अभिमान की शिष्टाचार में गुंजायश नहीं रहती । नम्रता, विनयशीलता आदि सद्गुण शिष्टाचार के आधार हैं । इतना ही नहीं शिष्टाचार को सम्पदा–समृद्धि बढ़ने के साथ ही उसकी निरभिमानता और नम्रता, विनयशीलता भी बढ़ती जाती है । जिस तरह फलों के बोझ से वृक्ष नीचे झुक जाते हैं उसी तरह ऐसे व्यक्तियों की लौकिक सम्पदाएँ ऐश्वर्य के बढ़ने पर भी नम्रता और विनयशीलता बढ़ जाती है ।

शिष्टाचार एक ऐसा सद्गुण है जिसे अभ्यास और आचरण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है । इसके लिए किन्हीं विशेष परिस्थितियों या उच्च खानदान में जन्म लेने की आवश्यकता नहीं । किसी भी स्थिति का व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक शिष्टाचार का अभ्यास जीवन में डाल सकता है । इसके लिए संवेदनशीलता हृदय की कोमलता आवश्यक है । ऐसे व्यक्ति का अपने व्यवहार और जीवन क्रम में छोटी छोटी बातों पर भी ध्यान रहता है, जिससे दूसरों को कोई दुःख महसूस न हो । किसी का दिल न दुखे । शिष्टाचार में दूसरों की भावनाओं का ध्यान रखना आवश्यक है ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा